

पाठ्यपुस्तक विकास प्रक्रियाएँ : कुछ चिन्तन, कुछ सबक़ अरविन्द सरदाना



कई वर्षों तक मेरे साथ काम करने वाले सहयोगियों में से एक ने हाल ही में बातचीत के दौरान टिप्पणी की, “आप अभी भी सरकारों के द्वारा पाठ्यपुस्तक का निर्माण करवाने में विश्वास करते हैं?” यह बात थोड़ी मज़ाक में और थोड़ी गम्भीरतापूर्वक कही गई थी। चूँकि मध्य प्रदेश में हम तीन दशक तक काम करते रहे, लेकिन इसके बावजूद भी होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम, सामाजिक विज्ञान और प्राशिका जैसे प्रयोगों की कोई संस्थागत स्मृति नहीं है। 2002 में औपचारिक रूप से इन्हें समाप्त कर दिया गया और एक तरह से मानो इन्हें दफ़न कर दिया गया। वर्तमान पाठ्यपुस्तकों को देखकर लगता है कि हम 1980 के दशक का प्रतिबिम्ब देख रहे हैं। लगता है कि हम फिर से उसी जगह पर आ खड़े हुए हैं। पाठ्यक्रम विकल्प और प्रस्तुति आज भी ज्ञान, शिक्षणशास्त्र और शिक्षकों की भूमिका पर वही विचार दर्शाते हैं जिन्हें हमने एक बार बदलने की कोशिश की थी। लेकिन अन्य राज्यों और राष्ट्रीय स्तर पर किए जाने वाले प्रयासों के लिए यह बात सही नहीं है। राज्य स्तर पर पाठ्यचर्या सम्बन्धी प्रक्रियाओं को शुरू करने वाली टीमों का हिस्सा बनने के लिए कई अन्य राज्य सरकारों द्वारा हमें आमंत्रित किया गया। इसी तरह से एनसीईआरटी द्वारा 2005 के आस-पास विज्ञान और गणित में विशेष रूप से तैयार की गई पाठ्यपुस्तकों का उपयोग अन्य राज्यों द्वारा किया जा रहा है। मध्य प्रदेश ने भी इन पाठ्यपुस्तकों को अपनाया है। इस प्रकार से समान विचार अलग-अलग तरीके से, और शायद अधिक स्थाई रूप में भी, सामने आए हैं। इस पर बहस हो सकती है। मेरे सहयोगी कठोरता से प्रत्युत्तर दे सकते हैं कि राज्य के सन्दर्भ का ध्यान रखने की दिशा में कोई भी प्रयास नहीं किया गया है। सामाजिक विज्ञान को छोड़ दिया गया, जो इस विषय को दी जाने वाली प्राथमिकता को दर्शाता है।

क्या पाठ्यपुस्तक विकास प्रक्रिया अनुभव के बीजों की छिटका बुआई का एक तरीका है, जिसे सींचने पर निश्चित रूप से प्रतिक्रिया होगी? बेशक, हमारे पास यह जानने का कोई तरीका नहीं है कि क्या इसे रौंद दिया जाएगा या यह एक पूर्ण विकसित पेड़ न सही, एक छोटा पौधा बनकर तो विकसित होगा ही। ईमानदारी के नाते, 2002 में मध्य प्रदेश में एकलव्य के कार्यक्रमों को बन्द करने के अलावा, आइए, हम राज्य के उन प्रयासों की भी गिनती करें जिन्हें हाल ही में, अर्थात् 1995 के बाद, दफ़न दिया गया है।

इनमें राजस्थान में लोक जुम्बिश (1998), असम एससीईआरटी पहल (2000), गुजरात एससीईआरटी विज्ञान पहल (2002), दिल्ली एससीईआरटी प्रयास (2003), और आईसीआईसीआई फ़ाउण्डेशन के नेतृत्व में राजस्थान एससीईआरटी प्रयास (2010) शामिल हैं। अगर हम इस बात को समझने की कोशिश करें कि इन्हें बन्द क्यों कर दिया गया, तो हमें कुछ जानकारी मिल सकती है क्योंकि तभी हम उनके पीछे मौजूद कारणों को समझ पाएँगे। संस्थागत स्मृति जीवित नहीं रहती, लेकिन क्या अनुभव के बीज किसी सुप्त अवस्था में दफ़न हो जाते हैं और नए अवसर मिलने पर अकसर पुनर्जीवित हो जाते हैं? क्या वे दीर्घकालिक परिवर्तन में योगदान करते हैं? राज्य स्तर पर जिन दिग्गजों के साथ हमने बाद में कार्य किया, उनके मन में यह समझ डीपीईपी की प्राथमिक विद्यालय शिक्षा पर हुई कार्यशालाओं, लोक जुम्बिश तथा अन्य कार्यक्रमों की वजह से विकसित हुई थी। पाठ्यचर्या सम्बन्धी प्रक्रियाएँ ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जहाँ प्रतिस्पर्धी दृष्टिकोण और बातचीत के बीच संघर्ष चलता रहता है और जिनका रास्ता कभी भी आसान या एक समान नहीं होता। साथ ही यह देखकर बहुत तक्रलीफ़ और निराशा होती है कि जिन प्रयासों को करने में बरसों लग जाते हैं,



उन्हें राजनीतिक और नौकरशाही स्तर पर बदलावों के कारण समाप्त कर दिया जाता है। भले ही हमने पच्चीस वर्षों से भी अधिक समय तक इन कार्यक्रमों को कायम रखा, फिर भी एक प्रश्न जो हमने खुद से पूछा वह यह है कि क्या एकलव्य में यह हमारा भोलापन था कि हमने सूक्ष्म प्रयोगात्मक स्तर से प्रणाली में स्थूल परिवर्तनों तक एक रेखीय संक्रमण की उम्मीद की? सी.एन.सुब्रमण्यम के शब्दों में-

“विडम्बना यह थी कि नई पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशित होते ही नवाचार की भावना क्षीण-सी होने लगी और कक्षा-कक्ष की प्रक्रियाओं के ‘पैकेज’, शिक्षक उन्मुखीकरण, विकेन्द्रीकरण आदि के अन्य घटक पीछे रह गए। इसका मतलब यह हुआ कि नए विचारों को शायद ही कभी ज़मीनी स्तर पर लागू किया गया।”

फ़िलहाल आज जो लोग संघर्ष कर रहे हैं, उनको रणनीतिक प्रयासों के बारे में ऐसे कौन-से सुझाव दिए जा सकते हैं जो पाठ्यक्रम सम्बन्धी इन पहलों को बड़े लक्ष्य की ओर ले जाएँ?

केवल पाठ्यपुस्तकों का नहीं बल्कि एक कार्यक्रम का विकास

एकलव्य अनुभव से प्राप्त मुख्य सबक यह था कि यह सामाजिक विज्ञान के एक कार्यक्रम का विकास था। पाठ्यपुस्तकें उसका एक हिस्सा थीं, जो बहुत महत्वपूर्ण थीं और जिसके लिए बहुत कौशल या प्रयास की आवश्यकता थी, लेकिन वे अन्तिम उद्देश्य नहीं थीं। कक्षा प्रक्रियाओं में परिवर्तन भी उतना ही महत्वपूर्ण घटक था। यह केवल शिक्षक संवाद और प्रशिक्षण सत्रों के द्वारा ही सम्भव था—परिप्रेक्ष्य, मूल्यां और नई सामग्री पर एक संवाद। ये प्रशिक्षण सत्र एक वर्ष में पन्द्रह से बीस दिनों तक चलते थे। इसके साथ ही, चूँकि सामग्री को आजमाया जा रहा था, इसलिए नियमित रूप से कक्षा का अनुवर्तन और शिक्षकों के साथ बातचीत भी की जा रही थी। इन तत्वों के बिना कक्षा-कक्ष की प्रक्रिया नहीं बदल सकती है।

इसके विपरीत, एनसीईआरटी और एससीईआरटी प्रक्रियाओं में पाठ्यपुस्तक विकास टीमों को एक सख्त समय-सीमा का पालन करना पड़ता है। यह

एक प्रमुख बाधा है। मूल्यांकन के लिए कुछ न्यूनतम प्रशिक्षण और परिवर्तन बताए जाते हैं। लेकिन जैसा कि हमारा अनुभव है, यह कारगर नहीं होते। वास्तव में देखा जाए तो वे विकास टीम के लिए आवश्यक लक्ष्यों के रूप में शिक्षक संवाद के अन्य तत्वों से न तो निपट पाते हैं और न ही उनका निर्माण करते हैं (बत्रा)। इस ज़रूरत को स्वीकार किया जाता है और समझा भी जाता है, लेकिन कार्यान्वयन के लिए कोई योजना या रणनीति नहीं है। संविधान में राज्य नीति के हमारे निदेशात्मक सिद्धान्तों की तरह इसे पूरी तरह से वांछनीय कार्य के रूप में छोड़ दिया गया है जिसे पाठ्यपुस्तक विकास के बाद की प्रक्रिया के रूप में लिया जाना है। निष्पादन के लिए एक प्रामाणिक योजना के बिना ही पाठ्यों में विचार सन्निहित कर दिए जाते हैं। लेकिन वास्तव में इसे अनदेखा कर दिया जाता है। ऐसा क्यों होता है?

संस्थागत निर्वात

देखा जाए तो एक स्तर पर, विशेषकर सीबीएसई विद्यालयों के सम्बन्ध में, एक संस्थागत निर्वात की स्थिति उत्पन्न हुई है। सीबीएसई से सम्बद्ध विद्यालय देश भर में फैले हुए हैं और इनकी दो श्रेणियाँ हैं – एक, केन्द्रीय और नवोदय विद्यालयों जैसे सरकारी विद्यालयों की और दूसरी, निजी रूप से प्रबन्धित विद्यालयों की जो ‘एनसीईआरटी पाठ्यक्रम के अनुसार’ लेबल वाली पाठ्यपुस्तकों का उपयोग करते हैं और जहाँ पर शिक्षक उन्मुखीकरण या प्रशिक्षण का कार्य संस्थान के प्रबन्धन पर छोड़ दिया जाता है। इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि करीब 25,000 सीबीएसई विद्यालयों में से लगभग 23,000 निजी तौर पर प्रबन्धित हैं। केन्द्रीय विद्यालयों के अपने संगठन हैं और कई निजी विद्यालयों के अपने नेटवर्क हैं, जैसे डीएवी, डीपीएस विद्यालय या कुछ व्यक्तिगत विद्यालय जो उन्मुखीकरण के लिए अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार निर्णय लेते हैं। एनसीईआरटी का कहना है कि इसके लिए संस्थागत जनादेश नहीं है और सलाहकार परिषद के लिए यह संख्या बहुत बड़ी है। सीबीएसई पाठ्यक्रम के लिए अनुमोदन प्राधिकारी है, लेकिन इसका मुख्य कार्य सम्बद्धीकरण और सार्वजनिक परीक्षा आयोजित

करना है। पुस्तकों के निर्माण के बाद कुछ शिक्षक कार्यशालाएँ आयोजित की गईं, लेकिन ये बेहद सीमित हैं। उदाहरण के लिए, आरआईई, भोपाल (एनसीईआरटी संस्थानों के समूह का एक भाग) में नई पाठ्यपुस्तकों के आने के बाद सामाजिक विज्ञान के लिए कार्यशालाएँ आयोजित की गईं लेकिन उस क्षेत्र के हजारों विद्यालयों में से शायद केवल पन्द्रह से बीस विद्यालयों ने ही भाग लिया। जहाँ परिप्रेक्ष्य निर्माण की आवश्यकता होती है, वहाँ टेलीविजन के माध्यम से शिक्षक से संवाद प्रभावी नहीं होता।

इस प्रकार, निजी विद्यालयों के शिक्षकों के पास पाठ्यपुस्तकों के परिप्रेक्ष्य और सामग्री के लिए जिम्मेदार लोगों के साथ बातचीत करने का कोई अवसर नहीं होता और इसलिए वे इन्हें 'ज़रूरत से ज़्यादा' (overloaded) समझ लेते हैं और कई गतिविधियों को अनावश्यक मान लेते हैं। उनमें से कई शिक्षक अनेक ऐसे प्रश्नों या गतिविधियों को छोड़ देते हैं जो सामाजिक विज्ञान की कक्षा को अन्तर्क्रियात्मक बना सकती हैं। वे उन छोटी-मोटी सूचनाओं की खोज में लग जाते हैं जिन्हें कक्षा में बोलकर लिखवाया जा सके। पाठ की भावना अकसर पलट जाती है। साथ ही चूँकि उनके विचारों और अनुभव को सुनने वाला कोई नहीं होता, इसलिए उनकी अपेक्षाएँ व्यवहार्य से अधिक हो सकती हैं। शिक्षकों को उनके प्रबन्धन द्वारा लचीलेपन की अनुमति नहीं दी जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें दरकिनार कर दिया गया है। पुरानी प्रक्रियाओं को बनाए रखने वाली संरचनाओं के बजाय नई पाठ्यपुस्तकों को दोषी ठहराया जा रहा है।

इस तरह के निर्वात में, कोई भी सार्वजनिक चर्चा चरम स्थिति की ओर ले जाती है – या तो पाठ्यपुस्तकों की प्रशंसा की जाती है या उनकी कटु आलोचना की जाती है। जो भी पाठ्यपुस्तकें ऐसे माहौल से बच जाती हैं जहाँ उन पर बहस न की गई हो, अनुभव से भरी हुई हों और फिर शिक्षण समुदाय द्वारा स्वीकार कर ली गई हों, वहाँ कई शिक्षक पाठ्यपुस्तक की सामग्री को केवल निष्पादित करने के कार्यों के रूप में लेते हैं और ऐसा कुछ नहीं जिस पर वे विश्वास करते हों। ऐसे माहौल में शिक्षक

की उदासीनता बढ़ती है। यह केवल एक दोषदर्शी दृष्टिकोण को पोषित करता है। कुछ उन्मुखीकरण सत्रों में व्यक्तिगत विद्यालय के शिक्षकों और प्रशासन ने मेरे साथ इस तरह का व्यवहार किया है कि जैसे मैं एनसीईआरटी के शैतान का अवतार हूँ जिससे वे प्रत्यक्ष रूप में कभी नहीं मिल सके थे! श्रीनिवासन 'इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली' में प्रकाशित अपने एक पेपर की शुरुआत एक छात्र के उद्धरण से करते हुए लिखते हैं -

“अप्रैल 2014 में, एक अखबार ने कक्षा-10 के सामाजिक विज्ञान बोर्ड की परीक्षा के प्रश्न के बारे में एक शिक्षार्थी की नाराज़ प्रतिक्रिया की सूचना दी। यह शिक्षार्थी सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम को बनाने वालों का विवरण जानना चाहता था और उन्हें जान से मार देना चाहता था (राजस्थान पत्रिका 2014)। 2012 में, भारतीय संसद को राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी), नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में कार्टून जैसी 'अनुचित' सामग्रियों के उपयोग के लिए स्थगित कर दिया गया था। इसके कारण स्कूली सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों (उदाहरण के लिए देखिए, सिंह 2012; वानखेड़े 2012) में शैक्षणिक उपकरणों के रूप में कार्टून के उपयोग पर एक वर्ष तक बहस चली। बाद में, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई), नई दिल्ली ने विद्यालयों को सूचित किया कि बोर्ड परीक्षाओं में सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों (एनसीईआरटी) की 'दृश्य-सामग्री' से सम्बन्धित कोई प्रश्न न पूछा जाए (हिन्दू 2010)।”

मुद्दे के प्रति शिक्षकों की उदासीनता भी इसकी वजह हो सकती है। उनकी राय नहीं माँगी गई। इस बात पर विचार नहीं किया गया कि वे पाठ्यपुस्तकों का उपयोग किस तरह से करते हैं। उन्हें 'दृश्य-सामग्री' से सम्बन्धित सवालों पर प्रतिबन्ध लगाने से कोई फ़र्क नहीं पड़ा। शिक्षकों की यह उदासीनता उनके साथ संवाद न करने से उपजी है। जो पाठ्यपुस्तकें परिप्रेक्ष्य में बदलाव की पेशकश करती हैं, उनके लिए संवाद आवश्यक है और यह कोई वैकल्पिक चीज़ नहीं जो आप अपने लिए खोज लें। कई लोगों के लिए नई किताबें उनके स्नातक या स्नातकोत्तर

पाठ्यक्रम संगठन से मेल नहीं खाती हैं। यदि बातचीत सम्भव नहीं है तो मैं अपने सहयोगी की सलाह मान लूँगा और शायद इस प्रक्रिया को छोड़ दूँगा।

क्या नए संस्थागत मानदण्ड बनाकर शिक्षक संवाद को अनिवार्य किया जा सकता है?

एक शाश्वत आशावादी होने के नाते मेरा मानना है कि संस्थागत रूप से शिक्षकों के साथ बातचीत सुनियोजित की जा सकती है। इसके लिए एनसीईआरटी और सीबीएसई को संयुक्त रूप से नियमों की व्यवस्था (प्रोटोकॉल) स्थापित करनी होगी। इसका पहला सिद्धान्त तो यह है कि हमें सभी शिक्षकों तक पहुँचना चाहिए, चाहे वे सरकारी विद्यालयों के हों या निजी विद्यालयों के। प्रयास यह है कि कक्षा में आमतौर पर प्रचलित संस्कृति को बदला जाए। इस मामले में सरकारी और निजी दोनों ही विद्यालय समान हैं। भविष्य में निवेश करने की आवश्यकता है और यह सभी शिक्षकों को सम्बोधित किए बिना नहीं किया जा सकता है। इसके लिए सार्वजनिक प्रयास और सरकार द्वारा वित्तीय निवेश की आवश्यकता है। एक बदली हुई कक्षा संस्कृति एक सार्वजनिक भलाई की तरह है – यह सभी को लाभ देती है लेकिन यह सार्वजनिक प्रयास के बिना नहीं होगी।

एनसीईआरटी को आरआईई को केन्द्र बनाकर विद्यालयों के लिए राज्य संसाधन समूह बनाने का जनादेश लेना होगा। ये संसाधन समूह ऐसे लोगों का मिश्रण होगा जो स्वयं संसाधन शिक्षक हो सकते हैं, वे विश्वविद्यालयों या कॉलेजों में संकाय या आवश्यक क्षेत्र में अनुभव रखने वाले गैर-सरकारी संस्था के कर्मी हो सकते हैं। हमने विभिन्न राज्यों में इन प्रक्रियाओं को किया है और हम जानते हैं कि यह सम्भव है। विषय समूहों के गठन के लिए समय, निवेश और विज्ञान की आवश्यकता है। एनसीईआरटी को यह भूमिका निभानी चाहिए। साथ ही सीबीएसई को यह आदेश देना होगा कि प्रत्येक सम्बद्ध विद्यालय को, चाहे वह सरकारी हो या निजी, इन पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों के लिए विषयवार

दल भेजने होंगे। एक ऐसे आदेश की आवश्यकता है जो समर्थककारी हो। आदेश उन्हें कोर्स में तो ला सकता है लेकिन प्रक्रिया को बनाए रखने के लिए एनसीईआरटी द्वारा अकादमिक प्रयास जरूरी है। प्रशिक्षण सत्र और संवाद को आकर्षक बनाना होगा ताकि शिक्षक इसमें शामिल होना पसन्द करें। यद्यपि यह कठिन है पर हमें अन्ततः मजबूत संसाधन समूह और शिक्षक सहकर्मी समूह बनाने की दिशा में आगे बढ़ना होगा। सीबीएसई को चाहिए कि वह प्रत्येक शिक्षक को एनसीईआरटी और आरआईई की देखरेख में स्थापित संसाधन टीमों द्वारा आयोजित प्रशिक्षण सत्र में भाग लेने के लिए कहे।

शिक्षकों के इस सहकर्मी समूह को पेशेवरों के एक समूह के रूप में देखा जाना चाहिए और विद्यालय के अलग-अलग प्रबन्धन द्वारा टुकड़ों में तोड़ने या अलग-थलग करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। पाठ्यपुस्तकों या कक्षा प्रक्रियाओं के डिजाइन या अध्यायों के चयन के फैसले को विद्यालय प्रबन्धन और उनके शिक्षकों पर छोड़ देना चाहिए। यह विषयवस्तु/सामग्री और शिक्षाशास्त्र पर बातचीत की एक प्रक्रिया है, न कि कोई उच्च प्राधिकरण जो एक ऐसे समान प्रारूप को लागू करे जिसका पालन सभी विद्यालयों को करना है और यह एक परिषद का वास्तविक काम है। एक ऐसे प्रोटोकॉल की आवश्यकता है जो दो संस्थानों को एक नई व्यवस्था में लेकर आए। कुछ राज्य सरकारों ने यह कोशिश की है, लेकिन वे इस प्रक्रिया को बनाए रखने में सक्षम नहीं हो पाई हैं। आज हम पाठ्यपुस्तकों और गाइड के निजी बाजार से जूझ रहे हैं, जिन्होंने इस स्थान पर कब्जा कर लिया है और अन्ततः शिक्षकों को पृथककारी स्थिति में ला रहे हैं।

पहले मूल्यांकन के मानदण्ड, फिर पाठ्यपुस्तकें

शिक्षकों के साथ इस मुद्दे पर संवाद अकसर तीखा रुख ले लेता है। शैक्षणिक विधियों या सामग्री पर कोई भी चर्चा जल्द ही प्रश्न के रूप में बदल जाती है, 'लेकिन यह हमारे परीक्षा पैटर्न या ढाँचे के अनुकूल नहीं है।' यही असली अड़चन है। जब तक हम

मूल्यांकन पर अपनी सोच को बदलने के लिए तैयार नहीं होते, तब तक संवाद आगे नहीं बढ़ पाएगा। या फिर पाठ्यक्रम का पूरा होना अपने आप में एक लक्ष्य बन जाता है, क्योंकि कोई तीसरा व्यक्ति पूरे पाठ्यक्रम के आधार पर ही परीक्षा निर्धारित करेगा। शिक्षक अपने विद्यार्थियों के मूल्यांकन के लिए जिम्मेदार क्यों नहीं हो सकते? कैसे ज्यादातर मूल्यांकन डर और मानसिक आघात पैदा करने का साधन बनने के बजाए अधिगम में सहायता कर सकते हैं?

आप बच्चों की रुचि और सीखने का मूल्यांकन कैसे करते हैं? यदि कोई सीखने के लिए सहायता करने वाले मूल्यांकन में रुचि रखता है तो वह क्या प्रयोग करे? कक्षा-8 की बोर्ड परीक्षा के लिए खुली किताब परीक्षाएँ और हाथ से किए जाने वाले प्रयोगों के लिए होविशिका के पुराने अनुभवों ने हमारे लिए लक्ष्य तय किए। सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में कई केस स्टडीज़ थीं और उनमें कहानियों का उपयोग किया गया था जिनमें हर खण्ड के बाद बीच-बीच में प्रश्न थे। यह सक्रिय हिस्सा था। ये सवाल मिले-जुले थे : जिनमें समझ, कहानी में निहित अवधारणा के साथ तर्क करने की क्षमता, दृश्य चित्र और नक्शे को समझना, और वैचारिक बिन्दुओं पर आपकी राय माँगने वाले खुले सवाल शामिल थे। (*बत्रा और सामाजिक अध्ययन*)। गौरतलब है कि बच्चों को लिखित रूप में अपने शब्दों में जवाब देने के लिए प्रोत्साहित करने के साथ-साथ मौखिक समझ पर भी ज़ोर दिया जाता था। शिक्षकों ने अपनी रणनीति खुद बनाई (*प्रकाश कान्त*)। कई शिक्षकों ने अपने विद्यालय के सन्दर्भ में छोटे प्रोजेक्ट तैयार किए या इन विचारों को बढ़ाया (*शोभा बाजपेयी*)।

मूल्यांकन प्रक्रिया में परिवर्तन, कार्यक्रम में अन्तर्निहित था और यह निर्माणाधीन पाठ्यपुस्तकों के परिप्रेक्ष्य का एक हिस्सा था। खुली किताब परीक्षा के लिए एक प्रारूप पर काम किया गया। समय के साथ पाठ में दिए गए अभ्यासों को अपेक्षाओं के सन्तुलन के लिए जाँचा गया। स्रोत व्यक्तियों द्वारा की गई समीक्षा से यह सुझाव सामने आया कि कौशल विकास के लिए हमारे द्वारा निर्धारित अभ्यास की तुलना में अधिक अभ्यास की ज़रूरत

थी और कहानियों से वैचारिक मुद्दों को निकालने के लिए बच्चों को अधिक मदद की आवश्यकता थी। कई बार हमें शिक्षकों के विवेचन को सही करना पड़ता था जो तर्क की अपेक्षित दिशा से बिल्कुल भिन्न होते थे। इसलिए यह पाठ्यपुस्तक विकास परियोजना नहीं थी, बल्कि सामाजिक विज्ञान के लिए एक ऐसा कार्यक्रम था जहाँ पाठ्यपुस्तकों, शिक्षक संवाद और मूल्यांकन पर एक साथ विचार किया गया था।

अधिकांश राज्यों में जहाँ हमने पाठ्यपुस्तकों पर काम किया, वहाँ जब तक हम एक कक्षा के लिए अपना काम पूरा करते तब तक सरकार ही बदल जाती। कई बार नौकरशाही स्तर पर होने वाले बदलाव पाठ्यक्रम सुधार की इस प्रक्रिया को रोकते या बदल देते। यदि दिशा में कोई सचेत परिवर्तन न भी हो और पाठ्यपुस्तकों का वास्तव में उपयोग किया जा रहा हो फिर भी शिक्षक प्रशिक्षण या परीक्षा में परिवर्तन की बात पर ध्यान नहीं दिया जाता। यह प्राथमिकता का क्षेत्र नहीं है। हमें अकसर बताया जाता है कि प्रक्रिया के सम्बन्ध में हमारी 'सहायता' खत्म हो गई है। अन्य बातों के लिए एससीईआरटी अपने दम पर प्रबन्धन करेगा। इस प्रकार, सुधार मात्र टुकड़ों में देखा जाता है और उत्साह जल्द ही समाप्त हो जाता है। चूँकि यह स्थिति अकसर सामने आई है इसलिए यह स्पष्ट है कि प्रणालीगत सुधार प्रमुख मुद्दा नहीं है। यह केवल पाठ्यपुस्तक के विकास तक सीमित है।

ऐसे में आगे कैसे बढ़ा जाए? एक तरीका यह हो सकता है कि आप प्रक्रिया को उलट दें। पाठ्यक्रम संशोधन प्रक्रिया के अगले दौर में पाठ्यपुस्तक विकास टीमों के साथ पहला जनादेश, चाहे वह एनसीईआरटी हो या एससीईआरटी, यह होना चाहिए कि विभिन्न स्तरों पर मौजूदा पाठ्यपुस्तकों के मूल्यांकन के प्रारूप को बदला जाए। इन प्रणालियों को व्यापक शिक्षक संवाद के साथ विकसित किया जाए और एक शैक्षिक वर्ष के लिए सभी विद्यालयों में लागू किया जाए और सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि ऐसा नई पाठ्यपुस्तकों को प्रणाली में लाने से पहले किया जाए। इसलिए मूल्यांकन के स्वरूप में बदलाव पर ध्यान देना और उसे प्राथमिकता देना



पहला चरण होगा और पाठ्यपुस्तक दूसरा।

शिक्षक, विद्यार्थी, विद्यालय और माता-पिता घनिष्ठ रूप से शामिल हों। बातचीत जीवन्त और सहभागितापूर्ण हो। शैक्षिक निकायों और पाठ्यपुस्तक विकास टीमों के सामने यह एक चुनौती है। उन्हें शैक्षिक तंत्र को एक ऐसे विकल्प का विकास करने में मदद करनी होगी जिसे बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जा सके। यह समझना महत्वपूर्ण है कि यह उस संरचना की आधारशिला है जिसे हमने बनाया है। परीक्षा का स्वरूप किसी भी नए प्रयोग को टिकने नहीं देता और इसलिए

हमारी संस्कृति के भीतर यथास्थिति बनी रहती है। एक सहयोगी ने टिप्पणी की, “क्या आप यह सुझाव नहीं दे रहे हैं कि एक छोटी इकाई, एक बड़ी और महत्वपूर्ण इकाई को नियंत्रित करे यानी छुट-भैयों का राज हो?” नहीं, यह आधारशिला मेहराब को सम्हाले हुए है, और इसके माध्यम से सम्पूर्ण इमारत को।

हमें बातचीत के ज़रिए इस मामले को सुलझाना है और आगे बढ़ना है। तब पाठ्यपुस्तकें कुछ हद तक स्वीकृत नए मानदण्ड की दिशा में काम करेंगी।

References

Batra, Poonam *Social Science Learning in Schools: Perspective and Challenges*, New Delhi, Sage, 2010

Samajik Adhyan Shikshan: Ek Prayog, Eklavya, 1994

Srinivasan, M V: *Reforming social science curriculum in India, Issues and Challenges*, EPW, October 17, 2015

Bajpai, Shobha: *Living Democracy, Teacher Plus*, May-June, 2018

Kant, Prakash: *Samajik Adhyan Navachar: Bachon ke sath mane bhi sekha*, Eklavya, (to be published)

Subramaniam, C N: *Pursuing the Elusive Goal of Systemic Change in School Education*, Mimeo, Institute of Advanced Studies, Shimla, 2019

अरविन्द सरदाना एकलव्य में सामाजिक विज्ञान टीम के सदस्य रहे हैं। वे एनसीईआरटी में पाठ्यचर्या की टीम प्रक्रियाओं और राज्य सरकार की कई अन्य पहलों के साथ निकटता से जुड़े रहे हैं। उनसे arvind.sardana@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : नलिनी रावल पुनरीक्षण : प्रीति मिश्रा कॉपी एडिटर : ज्योति चौरड़िया